□ महासती श्री धर्मशीला, एम० ए०
[प्राकृत भाषा की विदुषी चिन्तनशील साध्वी
महासती उज्ज्वलकुमारी जी की शिष्या]

प्राकृतभाषा का व्याकरणपरिवार

□

भाषा परिज्ञान के लिए व्याकरण ज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता है। प्राकृत में छन्द, ज्योतिष, द्रव्य-परीक्षा, धातु-परीक्षा, भूमि-परीक्षा, रत्न-परीक्षा, नाटक, काव्य, महाकाव्य, सट्टक आदि विभिन्न रचनायें होती रही हैं। जब किसी भी भाषा के वाङ्मय की विशाल राशि संचित हो जाती है तो उसकी विधिवत् व्यवस्था के लिए व्याकरण ग्रन्थ लिखे जाते हैं।

प्राकृत जनभाषा होने से प्रारम्भ में इसका कोई व्याकरण नहीं लिखा गया। वर्तमान में प्राकृत भाषा के अनुशासन सम्बन्धी जितने व्याकरण ग्रन्थ उपलब्ध हैं, वे सभी संस्कृत भाषा में लिखे गये हैं, प्राकृत में नहीं। कुछ विद्वानों का कहना है कि—प्राकृत भाषा का व्याकरण प्राकृत में लिखा हुआ अवश्य था, परन्तु आज वह अनुपलब्ध है। अतः आज प्राकृत भाषा का व्याकरण-परिवार जो उपलब्ध है, उस पर हम थोड़ा विचार करेंगे।

विद्वानों ने प्राकृत व्याकरण की दो शाखायें मानी है। एक पश्चिमी और दूसरी पूर्वी। प्रथम शाखा को वाल्मीकी-परम्परा और द्वितीय को वररुचि की परम्परा कहा जाता है।

पश्चिमी परम्परा का प्रतिनिधि त्रिविक्रम (ई० १३००) कृत प्राकृत व्याकरण है। कहा जाता है कि—इसे महाकवि बाल्मीकि ने रचा था, परन्तु इस बात का कोई प्रामाणिक आधार नहीं है। लक्ष्मीधर की "षड्भाषा-चन्द्रिका" तथा सिंहराज का प्राकृत-रूपावतार भी इसी शाखा में अंतर्भूत होते हैं। पूर्वी शाखा का प्रथम व्याकरण वररुचि कृत 'प्राकृत-प्रकाश' है।

(१) **प्राकृत-प्रकाश**—यह व्याकरण श्री वररुचि ने रचा है। यह सर्वप्रथम प्राकृत व्याकरण कहा जाता है। कुछ विद्वान चण्ड के प्राकृत-लक्षण को प्रथम मानते हैं और उसका अनुकरण वररुचि ने किया है, ऐसा कहते हैं। वररुचि का गोत्र कात्यायन कहा गया है। डॉ० पिशल ने अनुमान किया था कि प्रसिद्ध वार्तिककार कात्यायन और वररुचि दोनों एक ही व्यक्ति हैं, किन्तु इस कथन की पुष्टि के लिए एक भी सबल प्रमाण मिलता नहीं है।

एक वररुचि कालिदास के समकालीन भी माने जाते हैं जो विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे—

"रत्नानि वै वररुचिर्नवविक्रमस्य" ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरी जगह ऐसा भी उल्लेख आता है कि—

पाणिनीं सूत्रकारं च भाष्यकारं पतञ्जलीम् वाक्यकारं वररुचिम्''।

इस प्रकार वररुचि के बारे में भिन्न-भिन्न मान्यताएँ हैं।

प्राकृत-प्रकाश में कुल ५०९ सूत्र हैं। भामह-वृत्ति के अनुसार ४८७ और चन्द्रिकाटीका के अनुसार ५०९ सूत्र उपलब्ध हैं। प्राकृत-प्रकाश की चार प्राचीन टीकाएँ भी प्राप्य हैं—

(१) **मनोरमा**—इस टीका के रचयिता भामह हैं। इसका काल सातवीं-आठवीं शताब्दी है।

(२) **प्राकृतमञ्जरी**—इस टीका के रचयिता कात्यायन नाम के विद्वान् हैं। इनका काल छठी-सातवीं शताब्दी है।

(३) **प्राकृतसंजीवनी**—यह टीका वसन्तराज ने लिखी है। इसका काल १४-१५ शताब्दी है।

(४) **सुबोधिनी**—यह टीका सदानन्द ने लिखी है।

नवम परिच्छेद के नवम सूत्र की समाप्ति के साथ समाप्त हुई है।

नारायण विद्याविनोद-कृत 'प्राकृतपाद' इत्यादि टीकायें हैं। कंसवहो तथा उसाणिरुद्ध के रचयिता मलावार निवासी रामपाणिवाद ने भी इस पर टीका लिखी है। इस टीका में गाथा सप्तसती, कर्पूर-मंजरी, सेतुबन्ध और कंसवहो आदि से उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं।

प्राकृत-प्रकाश में बारह परिच्छेद हैं।

प्रथम परिच्छेद में स्वर-विकार और स्वर-परिवर्तन के नियमों का निरूपण किया गया है। विशिष्ट-विशिष्ट शब्दों में स्वर-सम्बन्धी जो विकार उत्पन्न होते हैं, उनका ४४ सूत्रों में विवेचन किया है।

दूसरे परिच्छेद में ४७ सूत्र हैं। इसका आरम्भ मध्यवर्ती व्यंजनों के लोप से होता है। मध्य में आने वाले क, ग, च, ज, त, द, प, य और व के लोप का विधान है। तीसरे सूत्र के विशेष-विशेष शब्दों के असंयुक्त व्यंजनों के लोप एवं उनके स्थान पर विशेष व्यंजनों के आदेश का नियमन किया गया है।

तीसरे परिच्छेद में ६६ सूत्र हैं। इसमें संयुक्त व्यंजनों के लोप, विकार एवं परिवर्तनों का निरूपण है। सभी सूत्र विशिष्ट-विशिष्ट शब्दों में संयुक्त व्यंजनों के परिवर्तन का निर्देश करते हैं।

चौथे परिच्छेद में ३३ सूत्र हैं। इसमें संकीर्णविधि-निश्चित शब्दों के अनुशासन वर्णित हैं। इस परिच्छेद में अनुकारी, विकारी और देशज इन तीनों प्रकार के शब्दों का अनुशासन आया है।

पाँचवें परिच्छेद में ४७ सूत्र हैं। इसमें लिंग और विभक्ति का आदेश वर्णित है।

छठे परिच्छेद में ६४ सूत्र हैं। इसमें सर्वनाम विधि का निरूपण है। यानी सर्वनाम शब्दों के रूप एवं उनके विभक्ति, प्रत्यय निर्दिष्ट किये गये हैं।

सातवें परिच्छेद में ३४ सूत्र हैं। इसमें तिङन्त विधि है। धातुरूपों का अनुशासन संक्षेप में लिखा गया है।

अष्टम परिच्छेद में ७१ सूत्र हैं। इसमें धात्वादेश है। संस्कृत की किस धातु के स्थान पर प्राकृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में कौन-सी धातु का आदेश होता है, इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। यह प्रकरण बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

नवम परिच्छेद में १८ सूत्र हैं। यह परिच्छेद निपात का है। इसमें अव्ययों के अर्थ और प्रयोग दिये गये हैं।

दसवें परिच्छेद में १४ सूत्र हैं। इसमें पैशाची भाषा का अनुशासन है।

ग्यारहवें परिच्छेद में १७ सूत्र हैं। इसमें मागधी प्राकृत का अनुशासन है।

बारहवें परिच्छेद में ३२ सूत्र हैं। इसमें शौरसेनी भाषा के नियम दिये हैं।

प्रारम्भ के ९ परिच्छेद माहाराष्ट्री के हैं, १०वाँ पैशाची का है, ११वां मागधी का और १२वाँ शौरसेनी का है।

कुछ इतिहासकारों का मत है कि—अन्तिम तीन परिच्छेद भामह अथवा किसी अन्य टीकाकार ने लिखे हैं। प्राकृतसंजीवनी और प्राकृतमंजरी में केवल महाराष्ट्री का ही वर्णन है। सम्भव है कि ये तीन परिच्छेद हेमचन्द्र के पूर्व ही सम्मिलित कर लिए गये होंगे।

वररुचि का प्राकृतप्रकाश भाषाज्ञान की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत भाषा की ध्वनियों में किस प्रकार के ध्वनि-परिवर्तन होने से प्राकृत भाषा के शब्द रूप बनते हैं, इस विषय पर इसमें विस्तृत प्रकाश डाला गया है। प्राकृत अध्ययन के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है।

वररुचि का समय लगभग छठी शताब्दी माना जाता है। चण्ड का समय तीसरी, चौथी शताब्दी माना जाता है। इससे स्पष्ट है कि वररुचि के प्राकृतप्रकाश से पूर्व चण्ड का प्राकृतलक्षण होगा।

(२) **प्राकृतलक्षण**—यह रचना चण्ड कृत है। कुछ विद्वान् वररुचि के प्राकृतप्रकाश को प्रथम मानते हैं और कुछ विद्वान् चण्ड के प्राकृतलक्षण को प्रथम मानते हैं। परन्तु सम्भव है की यही प्रथम होगा। डॉ० पिशल जैसे अनेक विद्वान प्राकृत लक्षण को पाणिनीकृत कहते हैं। परन्तु आजकल यह ग्रन्थ उपलब्ध न होने से निश्चित कुछ नहीं कह सकते।

प्राकृतलक्षण यह संक्षिप्त रचना है। इसमें सामान्य प्राकृत का जो अनुशासन है, वह प्राकृत अशोक की धर्मलिपि जैसी प्राचीन भाषा प्रतीत होती है। वररुचि के प्राकृतप्रकाश की प्राकृत उसके पश्चात् की प्रतीत होती है।

वीर भगवान को नमस्कार करके चण्ड ने इस व्याकरण की रचना की है। इस व्याकरण के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि—उस समय प्राकृत में आज की भाँति अनेक भेद नहीं थे।

डॉ० हार्नल ने ई० स० १८८० में कलकत्ता में कलकत्ता से अनेक प्राचीन प्रतियों की तुलना करके इसकी प्रति छपाई थी। उससे अनेक बातों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है, परन्तु आज वह भी अनुपलब्ध है।

इस व्याकरण में चण्ड ने बताया है कि मध्यवर्ती अल्पप्राण व्यंजनों का लोप नहीं होता है, वे वर्तमान रहते हैं।

इस ग्रन्थ में कुल ९९ या १०३ सूत्र हैं। वे चार पादों में विभक्त हैं। आरम्भ में प्राकृत शब्दों के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीन रूप—तद्भव, तत्सम और देशज बतलाये हैं। तीनों लिंग और विभक्तियों का विधान संस्कृत के समान ही पाया जाता है।

प्रथम पाद के ५वें सूत्र से अन्तिम ३५वें सूत्र तक संज्ञाओं और सर्वनामों के विभक्ति रूपों का निरूपण किया है।

द्वितीय पाद के २९ सूत्रों में स्वर-परिवर्तन, शब्दादेश और अव्यय का कथन किया गया है।

तृतीय पाद के ३५ सूत्रों में व्यंजन-परिवर्तन के नियम दिये गये हैं।

चतुर्थ पाद में केवल चार सूत्र ही हैं। इनमें अपभ्रंश का लक्षण, अधोरेफ का लोप न होना, पैशाची की प्रवृत्तियाँ, मागधी की प्रवृत्तियाँ, र् और स् के स्थान पर ल् और श् का आदेश, शौरसेनी में त के स्थान पर विकल्प के द का आदेश किया गया है।

(३) **प्राकृतव्याकरण**—"सिद्धहेमशब्दानुशासन" नाम का आचार्य श्री हेमचन्द्र रचित व्याकरण है। यह व्याकरण सिद्धराज को अर्पित किया है और हेमचन्द्र द्वारा रचित है, इसलिए इसे "सिद्धहेम व्याकरण" नाम दिया गया है।

इस व्याकरण में सात अध्याय संस्कृत शब्दानुशासन पर और आठवें अध्याय में प्राकृत भाषा का अनुशासन लिखा गया है। आचार्य हेमचन्द्र का यह प्राकृत व्याकरण उपलब्ध समस्त प्राकृत व्याकरणों में सबसे अधिक परिष्कृत, सुव्यवस्थित और परिपूर्ण है।

सिद्धहेमव्याकरण का समय १०८८-११७२ ईस्वी का माना जाता है। इसका सम्पादन १९२८ में पी० एल० वैद्य ने किया है। दूसरे अनेक विद्वानों ने भी इसका सम्पादन किया है।

इस व्याकरण में प्राकृत की छः उप-भाषाओं पर विचार किया है—(१) महाराष्ट्री, (२) शौरसेनी, (३) मागधी, (४) पैशाची, ५) चूलिका, पैशाची और (६) अपभ्रंश। अपभ्रंश भाषा का नियमन ११९ सूत्रों में स्वतन्त्र रूप से किया है।

पश्चिमी प्रदेश के प्राकृत के विद्वानों में आचार्य हेमचन्द्र का नाम सर्वप्रथम है। जिस प्रकार वररुचि के व्याकरण की भाषा शुद्ध महाराष्ट्री मानी जाती है, उसी प्रकार जैन आगमों के प्रभाव के कारण हेमचन्द्र की प्राकृत को जैन महाराष्ट्री प्राकृत कहा जाता है।

हेमचन्द्र ने स्वयं ही बृहत् और लघु वृत्तियों में अपने व्याकरण की टीका प्रस्तुत की है। लघु-वृत्ति "प्रकाशिका" के नाम से मिलती है। उदयसोभाग्य गणिन् द्वारा "प्रकाशिका" पर की गई एक टीका "हेमप्राकृतवृत्ति ढुण्ढिका" अथवा "व्युत्पत्तिवाद" नाम से मिलती है। जिसे कुछ विद्वान् "प्राकृत प्रक्रिया वृत्ति" भी कहते हैं। हेमचन्द्र के आठवें परिच्छेद पर नरेन्द्रचन्द्रसूरि रचित "प्राकृत प्रबोध टीका" उपलब्ध होती है।

इस व्याकरण में कहीं-कहीं कश्चित्, केचित्, अन्ये इत्यादि प्रयोग से मालूम पड़ता है कि—हेमचन्द्र ने अपने से पूर्व के व्याकरणकारों से भी सामग्री ली होगी।

हेमचन्द्र की शैली चण्ड और वररुचि से ज्यादा परिष्कृत है। हेमचन्द्र ने प्राचीन परम्परा को स्वीकार करके अनेक नये अनुशासन उपस्थित किये हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस व्याकरण में चार पाद हैं। प्रथम पाद में २७१ सूत्र हैं। इसमें सन्धि, व्यंजनान्त शब्द, अनुस्वार, लिंग, विसर्ग, स्वर-व्यत्यय और व्यंजन-व्यत्यय का विवेचन किया गया है।

द्वितीय पाद के २१८ सूत्र हैं। इसमें संयुक्त व्यंजनों के परिवर्तन, समीकरण, स्वरभक्ति, वर्ण-विपर्यय, शब्दादेश, तद्धित, निपात और अव्ययों का निरूपण है।

तृतीय पाद में १८२ सूत्र है। इसमें कारक, विभक्तियाँ तथा क्रिया रचना सम्बन्धी नियमों का कथन किया गया है।

चौथे पाद में ४४८ सूत्र हैं। आरम्भ के २४९ सूत्रों में धात्वादेश और आगे क्रमशः शौरसेनी इत्यादि छह भाषाओं का निरूपण किया गया है।

आचार्य श्री हेमचन्द्र के मत से प्राकृत शब्द तीन प्रकार के हैं—तत्सम, तद्भव और देशज; इसमें से तद्भव शब्दों का अनुशासन इस व्याकरण में किया गया है।

आचार्य हेमचन्द्र ने "**आर्षम्**" ८/१/३ सूत्र में आर्ष प्राकृत का नामोल्लेख किया है और बतलाया है कि—"आर्षं प्राकृतं बहुलं भवति, तदपि यथास्थानं दर्शयिष्यामः। आर्षे हि सर्वे विधयो विकल्पयन्ते" अर्थात् अधिक प्राचीन प्राकृत आर्ष-आगमिक प्राकृत है। इसमें प्राकृत के नियम विकल्प से प्रवृत्त होते हैं। हेमचन्द्र ने विषय-विस्तार में बड़ी पटुता बताई है।

आचार्य हेमचन्द्र ने संस्कृत शब्दों के प्राकृत में जो आदेश किये हैं, वे भाषाविज्ञान से मेल नहीं खाते। उदाहरण स्वरूप "गम" धातु का हिण्ड या 'भम्म' नहीं बन सकता। हेमचन्द्र ने केवल अर्थ का ध्यान रखा है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से अध्ययन करने के लिए उचित होगा कि मूल धातुओं की खोज की जाये। पाणिनि के धातु पाठ में "हिण्डिगतौ" स्वतन्त्र धातु है। जिसके रूप "हिण्डति" इत्यादि बनते हैं। इसी प्रकार "भ्रम" धातु भी स्वतन्त्र है। यदि इस प्रकार भी सदृश्य धातुओं का ध्यान रखा जाये तो अध्ययन अधिक वैज्ञानिक हो सकेगा।

(४) **संक्षिप्तसार**—श्री क्रमदीश्वर का यह व्याकरण संस्कृत, प्राकृत इन दोनों भाषा पर लिखा है और सिद्धहेम व्याकरण की तरह इसमें भी ८वें अध्याय में प्राकृत व्याकरण का विचार किया है। उसे "प्राकृतपाद" की संज्ञा दी है।

इस ग्रन्थ में प्राकृत के व्याकरण के छह विभाग किये हैं—

(१) स्वरकार्य, (२) हलकार्य, (३) सुबन्तकार्य, (४) तिङन्तकार्य, (५) अपभ्रंशकार्य और (६) छन्द कार्य।

क्रमदीश्वर ने अपने संक्षिप्तसार व्याकरण पर एक छोटी-सी टीका भी लिखी है। इस पर और तीन टीका हैं, जो प्रकाशित नहीं हुई हैं—

(१) जूमरनन्दिन् की रसवती,
(२) चण्डिदेव शर्मन् की प्राकृतदीपिका,
(३) विद्याविनोदाचार्य की प्राकृतपाद टीका।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रमदीश्वर ने वररुचि का ही अनुकरण किया है। इनका काल हेमचन्द्र और बोधदेव के बीच १२वीं १३वीं शताब्दी है।

(५) **प्राकृतव्याकरण**—यह व्याकरण त्रिविक्रमदेव ने रचा है। जिस प्रकार आचार्य हेमचन्द्र ने सर्वाङ्पूर्ण प्राकृत व्याकरण लिखा है, उसी प्रकार त्रिविक्रमदेव का यह सर्वाङ्पूर्ण व्याकरण है। इनकी स्वोपज्ञवृत्ति और सूत्र दोनों ही उपलब्ध हैं।

इस व्याकरण में तीन अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में ४-४ पाद हैं। इस प्रकार कुल १२ पादों में यह व्याकरण पूर्ण हुआ है। इसमें कुल १०३६ सूत्र हैं।

श्री त्रिविक्रमदेव ने हेमचन्द्र के सूत्रों में ही कुछ फेर-फार करके अपने सूत्रों की रचना की है। विषयानुक्रम हेमचन्द्र का ही है। इस व्याकरण में देशी शब्दों के वर्गीकरण से हेमचन्द्र की अपेक्षा नवीनता दिखती है। यद्यपि अपभ्रंश के उदाहरण हेमचन्द्र के ही हैं, परन्तु संस्कृत छाया देकर इन्होंने अपभ्रंश के दोहों को समझाने का प्रयास किया है।

श्री त्रिविक्रमदेव ने अनेकार्थक शब्द भी दिये हैं। इन शब्दों के देखने से तत्कालीन भाषाओं का ज्ञान तो होता ही है, पर साथ-साथ अनेक सांस्कृतिक बातों की भी जानकारी मिलती है। इस प्रकार हेमचन्द्राचार्य के व्याकरण की अपेक्षा इस व्याकरण में अनेक विशेषताएँ हैं।

इसमें शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका-पैशाची इत्यादि भाषाओं के नियम भी मिलते हैं। इसमें श्री त्रिविक्रमदेव ने मंगलाचरण में वीर भगवान को नमस्कार किया है। ऐतिहासिक विद्वान त्रिविक्रमदेव को दिगम्बर जैन मानते हैं।

इनके व्याकरण के सम्बन्ध में दो मत प्रचलित हैं। कुछ तो कहत हैं कि सूत्र और वृत्ति दोनों ही त्रिविक्रमदेव के हैं, कुछ विद्वान सूत्रों को बाल्मीकिकृत और वृत्ति त्रिविक्रमकृत मानते हैं।

सूत्रों की रचना पाणिनीय के अष्टाध्यायी की काशिका वृत्ति के अनुसार हुई है। इनका समय १२—१५ शताब्दी के बीच का है, क्योंकि हेमचन्द्र के ग्रन्थ का त्रिविक्रमदेव ने अपने ग्रन्थ में उल्लेख किया है और त्रिविक्रमदेव के ग्रन्थ का कुमारस्वामी (सोलहवीं शताब्दी) ने अपने ग्रन्थ रत्नायण में उल्लेख किया है। इन प्रमाणों से त्रिविक्रम का समय हेमचन्द्र और कुमारस्वामी के बीच का ही सम्भव है। पश्चिमी सम्प्रदाय के प्राकृत वैयाकरणों में त्रिविक्रम प्रमुख हैं।

(६) **प्राकृतरूपावतार**—श्री सिंहराज कृत प्राकृतरूपावतार त्रिविक्रमदेव के सूत्रों को ही लघु-सिद्धान्त-कौमुदी की पद्धति के रूप में लिखा है।

इसमें संक्षेप में सन्धि, शब्दरूप, धातुरूप, समास, तद्धित आदि का विचार किया है। इसमें छह भाग हैं। शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका-पैशाची और अपभ्रंश इन भाषाओं का विवेचन है। संज्ञा और क्रिया पद के ज्ञान के लिए यह व्याकरण बहुत ही उपयोगी है। सिंहराज की तुलना वरदाचार्य के साथ कर सकते हैं।

सिंहराज को कुछ विद्वान सिद्धराज भी कहते हैं। सिंहराज ने लक्ष्मीधर की भाँति ही सूत्रों पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृत्ति की रचना की है। इस वृत्ति का ही नाम प्राकृतरूपावतार रखा है। इसमें सूत्रों का क्रम षड्-भाषा-चन्द्रिका के समान ही रखा गया है।

यह ग्रन्थ सन् १९०९ में इ० हल्शे (E-Hultzsca) ने एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता की तरफ से प्रकाशित किया था। इनका काल १३००-१४०० ई० स० माना जाता है। तुलना की दृष्टि से इसमें प्रत्येक सूत्र के सामने आचार्य हेमचन्द्र के सूत्र भी दिये गये है। युष्मद्, अस्मद् आदि शब्दों के रूप दूसरे व्याकरणों की अपेक्षा से इसमें अधिक विस्तृत हैं। कहीं-कहीं रूपों में कृत्रिमता भी स्पष्ट दिखती है। इस व्याकरण का निर्माण करते समय सिंहराज ने इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि कोई भी आवश्यक नियम छूट न जाये। इसलिए उन्होंने आवश्यक सूत्रों को ही लिया है, शेष कुछ सूत्रों को छोड़ दिया है।

(७) **प्राकृतकल्पतरु**—श्री रामशर्मा तर्कवागीश ने प्राकृतकल्पतरु की रचना पुरुषोत्तम के प्राकृतनुशासन के अनुसार की है। ये बंगाल के निवासी थे। इनका समय ईसा की १७वीं शताब्दी माना जाता है। प्राकृतकल्पतरु पर स्वयं लेखक की एक स्वोपज्ञ टीका भी है।

इस व्याकरण में तीन शाखाएँ हैं। पहली शाखा में दस स्तबक हैं। जिनमें माहाराष्ट्री के नियमों का विवेचन है।

दूसरी शाखा में तीन स्तबक हैं—जिनमें शौरसेनी, प्राच्या, अवन्ती, वाह्नीकी, मागधी, अर्ध-मागधी और दाक्षिण त्या का विवेचन है। विभाषाओं में शाकारि, चाण्डालिका, शावरी, अभीरिका और टक्की का विवेचन है।

तीसरी शाखा में नागर, अपभ्रंश, ब्राचड तथा पैशाचिका का विवेचन है। कैकय, शौरसेनी, पांचाल, गौड, मागध और ब्राचड पैशाचिका भी इसमें वर्णन है।

(८) **प्राकृतसर्वस्व**—श्री मार्कण्डेय कवीन्द्र का 'प्राकृत सर्वस्व' एक महत्त्वपूर्ण व्याकरण है। इसका रचनाकाल १५वीं शताब्दी है। मार्कण्डेय ने प्राकृत भाषा के भाषा, विभाषा, अपभ्रंश और पैशाची ये चार भेद किये हैं।

भाषा के माहाराष्ट्री, शौरसेनी, प्राच्या, अवन्ती और मागधी भेद हैं। विभाषा के शकारी, चाण्डाली, शवरी, अभीरी और ढक्की यह भेद हैं। अपभ्रंश के नागर, ब्राचड और उपनागर तथा पैशाची के कैकयी, शौरसेनी और पांचाली इत्यादि भेद किये हैं।

मार्कण्डेय ने आरम्भ के आठ पादों में महाराष्ट्री प्राकृत के नियम बतलाये हैं। इन नियमों का आधार प्रायः वररुचि का प्राकृतप्रकाश ही है। ९वें पाद में शौरसेनी के नियम दिये गये हैं। १० वें पाद में प्राच्या भाषा का नियमन किया गया है। ११वें पाद में अवन्ती और वाह्नीकी का वर्णन है। १२वें पाद में मागधी के नियम बतलाये गये हैं। इनमें अर्धमागधी का भी उल्लेख है।

आचार्य श्री हेमचन्द्र ने जिस प्रकार पश्चिमीय प्राकृत भाषा का अनुशासन रचा है, उस प्रकार श्री मार्कण्डेय ने पूर्वीय प्राकृत का नियमन बतलाया है।

मार्कण्डेय ने अपने व्याकरण की रचना आर्या-छन्द में की है। उस पर उनकी स्वोपज्ञ टीका है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री मार्कण्डेय कवीन्द्र ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही वररुचि, शाकल्य, भरत, कोहल, भामह और वसन्तराज इत्यादि का नामोल्लेख किया है। भाषा के १६ भेद बताये हैं। भाषा, विभाषा के ज्ञान के लिए यह व्याकरण अत्यन्त उपयोगी है।

(९) **षड्भाषाचन्द्रिका**—श्री लक्ष्मीधर ने षड्भाषाचन्द्रिका में प्राकृत का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसमें प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, अपभ्रंश इत्यादि छह भाषाओं पर विस्तारपूर्वक विवेचन किया है, इसलिए इस ग्रन्थ का नाम षड्भाषाचन्द्रिका है। इस व्याकरण की तुलना भट्टोजिदीक्षित की सिद्धान्तकौमुदी के साथ कर सकते हैं। याने सिद्धान्तकौमुदी का क्रम इसमें है। उदाहरण सेतुबन्ध, गउडवहो, गाहासत्तसई, कप्पूरमंजरी आदि ग्रन्थों से दिये गये हैं। लक्ष्मीधर ने लिखा है—

"वृत्तिं त्रैविक्रमीगूढां व्याचिख्यासन्ति ये बुधाः।
षड्भाषाचन्द्रिका तैस्तद् व्याख्यारूपा विलोक्यताम् ॥"

याने जो विद्वान् त्रिविक्रम की गूढ़वृत्ति को समझना और समझाना चाहते हैं, वे उसकी व्याख्या-रूप षड्भाषाचन्द्रिका को देखें।

प्राकृत भाषा की जानकारी प्राप्त करने के लिए षड्भाषाचन्द्रिका अधिक उपयोगी है। इस व्याकरण में शब्दों के रूप तथा धातुओं के रूप पूर्ण विस्तृत रूप से लिखे गये हैं। इसमें देशी शब्दों का भी समावेश किया गया है।

लक्ष्मीधर का समय त्रिविक्रमदेव के बाद का माना जाता है। क्योंकि षड्भाषाचन्द्रिका में लक्ष्मीधर ने त्रिविक्रम का उल्लेख किया है। त्रिविक्रमदेव, लक्ष्मीधर और सिंहधर इन तीनों ने सूत्रों की संकलना एक समान ही की है।

लक्ष्मीधर के प्रारम्भ के श्लोक से लगता है कि—उनकी टीका त्रिविक्रम की वृत्ति पर आधारित है, उस टीका पर की यह टीका है ऐसा लगता है।

इन मुख्य व्याकरणों के अतिरिक्त अन्य अनेक प्राकृत व्याकरण हैं, जिनकी नामावली नीचे दी जा रही है। विस्तार भय से इनका विस्तृत विवरण यहाँ नहीं दिया है।

(१०) **प्राकृतकामधेनु—लंकेश्वर**—इस व्याकरण में ३४ सूत्र हैं। इसमें प्राकृत के मूल नियमों का विवेचन है।

(११) **प्राकृतानुशासन**—पुरुषोत्तम; इस व्याकरण में अनेक भाषा-विभाषाओं का वर्णन है।

(१२) **प्राकृतमणिदीप**—अप्पयदीक्षित; इसमें प्राकृत के सभी उपयोगी नियमों का विवेचन मिलता है।

(१३) **प्राकृतानन्द**—रघुनाथ कवि; इसमें ४१९ सूत्र हैं। वररुचि के प्राकृतप्रकाश के समान ही यह व्याकरण है।

(१४) **प्राकृतव्याकरण**—श्री रतनचन्द्र जी म०।

(१५) **प्राकृतव्याकरण**— समन्तभद्र।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१६) **प्राकृतबोध**—नरचन्द्र ।
(१७) **प्राकृतचन्द्रिका**—कृष्णपंडित (शेषकृष्ण)
(१८) **प्राकृतचन्द्रिका**—वामनाचार्य ।
(१९) **प्राकृतदीपिका**—चण्डिवर शर्मा ।
(२०) **प्राकृतानन्द**—रघुनाथ शर्मा ।
(२१) **प्राकृत प्रदीपिका**—नरसिंह ।
(२२) **प्राकृतमणिदीपिका**—चिन्नवोम्म भूपाल ।
(२३) **प्राकृतमणिदीप**—अप्पयज्वन् ।
(२४) **षड्भाषारूपमालिका**—दुर्गुणाचार्य ।
(२५) **षड्भाषाचन्द्रिका**—भामकवि ।
(२६) **षड्भाषासुबंतादर्श**—श्री नागोबा ।
(२७) **षड्भाषावार्तिक**.....
(२८) **षड्भाषामंजरी**.....
(२९) **प्राकृतव्याकरण**—शुभचन्द्र ।
(३०) **प्राकृत-मार्गोपदेशिका**—पं० बेचरदास जी ।
(३१) **औदार्य चिन्तामणि**—श्री श्रुतसागर ।
(३२) **प्राकृतव्याकरण**—श्री भोज ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org